मुरुदेश्वर कर्नाटक राज्य में अरब सागर के किनारे स्थित भटकल नगर से 13 किमी दूर स्थित उत्तर कन्नड़ जिले का एक धार्मिक और पर्यटन के लिए प्रसिद्ध नगर है। यहां विश्व की दूसरी सबसे बड़ी 123 फिट ऊंची भगवान शिव की मूर्ति स्थापित है। इसे अरब सागर में बहुत दूर से देखा जा सकता है। इस मूर्ति को इस तरह बनाया गया है कि सूरज की किरणें पड़ने से यह चमकती रहे। इसे बनाने में दो साल लगे थे और शिवमोग्गा के काशीनाथ और अन्य मूर्तिकारों ने बनाया था।

समुद्र का सौंदर्यपूर्ण संगम

मुरुदेश्वर

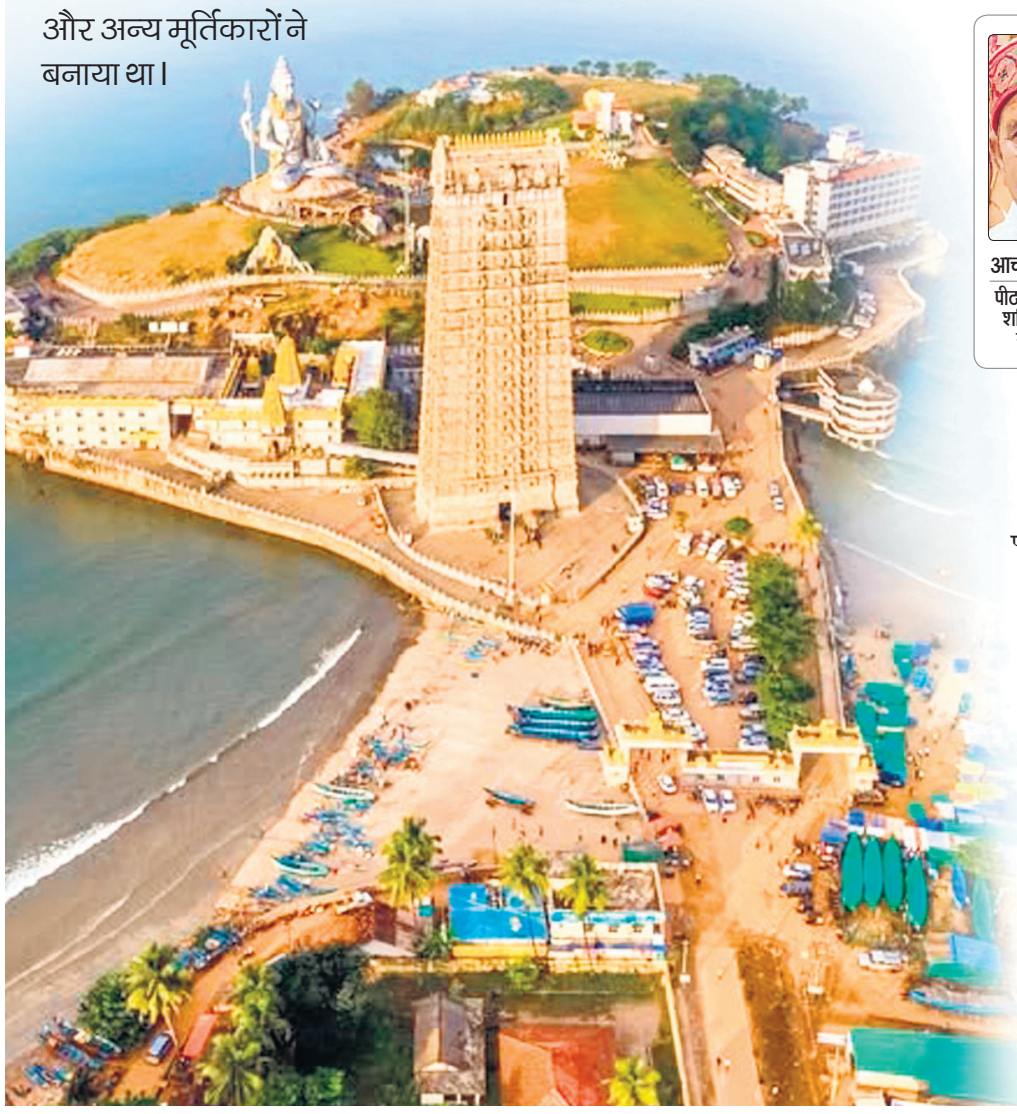

आचार्य अमरेश मिश्र
पीठाधीश्वर शकुंतला शक्ति पीठ विकास नगर, कानपुर

बेंगलुरु से मुरुदेश्वर पहुंचने के लिए हमने ट्रेन का चुनाव किया। रोज शाम 6.50 बजे बेंगलुरु से चलने वाली पंचगंगा एक्सप्रेस दूसरे दिन सुबह छह बजे मुरुदेश्वर पहुंचा देती है। मंदिर स्टेशन के पास ही स्थित है, लेकिन हमने पहले होटल पहुंचने का निश्चय किया। मुरुदेश्वर का सागरतट काफी खूबसूरत माना जाता है। पर्यटकों को यहां धार्मिक स्थल के साथ प्राकृतिक सुंदरता का आनंद भी मिलता है। कंदुका पहाड़ी पर, तीन ओर से पानी से घिरा मुरुदेश्वर मंदिर भगवान शिव को समर्पित है। यहां भगवान शिव का आत्मलिंग स्थापित है। यहां का राजा गोपुरा या राज गोपुरम विश्व में सब से ऊंचा गोपुरा माना जाता है। यह 20 मंजिल के बराबर करीब 249 फीट ऊंचा है। इस विशाल मीनार जैसे गोपुरम में लिफ्ट लगी है, जिसके ऊपर से अरब सागर और भगवान शिव की प्रतिमा का अद्भुत नजारा नजर आता है। इस गोपुरम को एक स्थानीय व्यवसायी ने बनवाया था। द्वार पर दोनों तरफ सजीव हाथी के बराबर ऊंची हाथी की मूर्तियां बनी हैं। मंदिर में दर्शन के लिए जींस-टीशर्ट की मनाही है। मुरुदेश्वर मंदिर हिंदू स्थापत्य शैली (द्रविड़ शैली) में बना है, जिसमें चालुक्य और काम्बा राजवंश की मूर्तिकला-शैली और ग्रेनाइट निर्माण देखने योग्य है। यहां अब पर्यटकों की बढ़ती संख्या देखते हुए स्कूबा डाइवंग और वॉटर स्पोर्टस के भी इंतजाम किए गए हैं।

पौराणिक कथा

मुरुदेश्वर मंदिर में भगवान शिव का आत्मलिंग स्थापित है। पौराणिक कथाओं के अनुसार, रावण ने अमरता का वरदान पाने के लिए भगवान शिव की कठिन तपस्या की। इससे प्रसन्न भगवान शिव ने उसे एक शिवलिंग दिया, जिसे 'आत्मलिंग' कहा जाता है। शिव ने कहा कि अगर तुम अमर होना चाहते हो, तो इसे लंका ले जाकर स्थापित कर देना, लेकिन एक बात ध्यान रखना कि इसे जिस स्थान पर रख दोगे, ये वहीं स्थापित हो जाएगा। रावण के अजेय होकर पृथ्वी को नष्ट करने की आशंका से भयभीत होकर नारद तुरंत गणेश जी के पास पहुंचे और एक योजना बनी। रावण संध्याकाल में विशेष उपासना करता था। जब वह गोकर्ण के पास था, तब भगवान विष्णु ने अपनी शक्ति से संध्याकाल का भ्रम उत्पन्न किया। गणेश जी ब्राह्मण बालक के रूप में रावण के सामने पहुंचे। रावण ने उनसे प्रार्थना समाप्त होने तक आत्मलिंग को थामे रखने का अनुरोध किया, लेकिन गणेश जी ने आत्मलिंग को धरती पर रख दिया। इसी बीच विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र हटा लिया, जिससे रावण ने सूर्य का प्रकाश देखा और खुद को ठगा हुआ महसूस किया। उसने आत्मलिंग को हटाने का बहुत प्रयास किया पर वह स्थापित हो चुका था।

पास ही में घूम सकते हैं फोर्ट

मुरुदेश्वर मंदिर के बाद मुरुदेश्वर फोर्ट घूमने जा सकते हैं। मंदिर के पास होने के कारण बड़ी संख्या में सैलानी यहां जाते हैं। इस फोर्ट के ऊपर से सामने सिर्फ नीले रंग का पानी ही पानी दिखाई देता है। इस फोर्ट का इतिहास विजयनगर साम्राज्य के राजाओं से जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि टीपू सुल्तान के बाद किसी ने भी मुरुदेश्वर फोर्ट का जीर्णोद्धार नहीं कराया। फोर्ट का कुछ हिस्सा अब खंडहर में तब्दील हो चुका है।

कैसे पहुंचें

मुरुदेश्वर से मंगलुरु अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा 165 किलोमीटर दूर स्थित है। हवाई अड्डे से टैक्सी या बस से मुरुदेश्वर जा सकते हैं। रास्ते में हरे-भरे वातावरण और तटीय परिदृश्यों के मनोरम दृश्य देखने को मिलते हैं। मुरुदेश्वर में रेलवे स्टेशन भी है, जो मंगलुरु, बेंगलुरु और मुंबई से जुड़ा है। रेलवे स्टेशन से ऑटो-रिक्शा से मंदिर पहुंच सकते हैं। मुरुदेश्वर के लिए मंगलुरु, उडुपी और बेंगलुरु जैसे शहरों से नियमित बस सेवाएं

उपलब्ध हैं। कार से यात्रा करने पर एनएच-66 से सफर करते हुए अरब सागर के किनारे मनोरम दृश्यों का आनंद उठा सकते हैं।

जॉब का पहला दिन

जब सपना बना सकारात्मक परिवर्तन का संकल्प

मेरा बचपन से ही शिक्षक बनने का सपना था। विद्यालय के दिनों में जब मैं अपने गुरुओं को श्रद्धा और सम्मान के साथ देखता, तो मन में यही आकांक्षा जन्म लेती कि एक दिन मैं भी ज्ञान का दीप प्रज्वलित करूंगा। वह स्वप्न 4 जुलाई 1994 को साकार हुआ, जब मैंने अपने शिक्षकीय जीवन की पहली पारी शुरू की। वह दिन आज भी स्मृतियों में उसी ताजगी के साथ अंकित है।

कृष्ण कुमार मिश्र
प्रधानाचार्य, अयोध्या

पहले दिन मैं ऊर्जा, उत्साह और हल्की-सी घबराहट के मिश्रित भावों से भरा विद्यालय पहुंचा। परिसर में प्रवेश करते ही बच्चों की चहचहाहट और प्रार्थना की धुन ने मन को अद्भुत सुकून दिया। प्रार्थना सभा में जब मेरा परिचय समस्त विद्यार्थियों और शिक्षकों से कराया गया, तो हृदय गर्व से भर उठा। उसी क्षण मुझे कक्षा अध्यापक का दायित्व भी सौंपा गया। यह विश्वास मेरे लिए सम्मान के साथ-साथ उत्तरदायित्व का संकेत था।

सभा के उपरांत शिक्षा अधिकारी श्री जीपी वंतू ने मुझे अपने कक्ष में बुलाया। उन्होंने मुस्कुराते हुए मेरी शक्तियों और कमजोरियों के बारे में पूछा। मैंने निस्संकोच कहा कि अनुशासन और नैतिक मूल्यों के प्रति मेरी दृढ़ आस्था मेरी सबसे बड़ी शक्ति है। साथ ही स्वीकार किया कि कभी-कभी शीघ्र क्रोध आ जाना मेरी कमजोरी रही है, पर मैं स्वयं को निरंतर सुधारने का प्रयास करता रहूंगा। मेरी स्पष्टवादिता से वे संतुष्ट दिखे और मुझे शुभकामनाएं दीं। पहली बार जब मैं

अपनी कक्षा में पहुंचा, तो उत्सुक निगाहें मुझे देख रही थीं। मैंने औपचारिकता छोड़कर संवाद का रास्ता चुना। बच्चों से उनके सपनों, रुचियों और खेलकूद के बारे में बात की। खेल मेरा प्रिय क्षेत्र रहा है और इसी माध्यम से विद्यार्थियों से आत्मीय संबंध स्थापित करने की शुरुआत हुई। मुझे लगा कि शिक्षक का दायित्व केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास, चरित्र निर्माण और जीवन मूल्यों के संवर्धन से भी गहराई से जुड़ा है। उस दिन घर लौटते समय मन में संतोष और संकल्प दोनों थे।

संतोष इस बात का कि मेरा स्वप्न साकार हुआ और संकल्प इस बात का कि मैं अपने विद्यार्थियों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन का कारण बनूंगा। रात को देर तक मैं उसी दिन की घटनाओं को याद करता रहा और भविष्य की योजनाएं बनाता रहा। सचमुच, वह पहला दिन मेरे जीवन की दिशा तय करने वाला अविस्मरणीय अध्याय बन गया।

बैगपाइप: पहाड़ों की सांसों में बसा सुर

आप पहाड़ की शांत सुरम्य वादियों में हों और दूर कहीं कोई छोटा सा गांव बसा हो। अचानक वहां से सुरीली सी स्वर लहरियां आकर हवा में बिखरने लगें, तो सोचिए कितना सुंदर अनुभव होगा। ऐसा ही अनुभव होता है बैगपाइप को सुनकर यानी हमारी भाषा में मशक बीन या जिसे बीन बाजा भी कहते हैं। मशक बीन जैसे ही अपने स्वर बिखेरती है, तो पहाड़ जीवंत होने लगते हैं, पत्ता-पत्ता मुस्कराने लगता है और फूलों में निखार आ जाता है। अंग्रेज भारत आए और अपने साथ ग्रेट ब्रिटेन के उत्तरी भाग में स्थित स्कॉटलैंड का वाद्य यंत्र बैगपाइप भी साथ लाए। फिर ब्रिटिश आर्मी के बैंड में इसे इस्तेमाल किया गया। आर्मी में शामिल भारतीय सैनिकों को भी इसे सीखने का अवसर मिला।

अमृता पांडे
स्वतंत्र लेखिका, हल्द्वानी

प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी भारतीय सैनिकों ने इसका खूब अभ्यास किया। यह बैगपाइप भारत का खासकर कुमाऊं और गढ़वाल का होकर रह गया, शायद इसलिए कि स्कॉटलैंड की आबोहवा और प्रकृति उत्तराखंड के सुरम्य वातावरण से काफी हद तक मेल खाती है। संगीत यूं भी भौगोलिक सीमाओं और सात समंदर की दूरियों को नहीं जानता। हमारे लोक संगीत के साथ इसका अटूट नाता बन गया। मशक बीन का साथ मिला, तो लोकगीतों की ध्वनि मशक बीन के माध्यम से निकालने लगी। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसने यहां के कई परंपरागत वाद्य यंत्रों को पीछे छोड़ दिया। इसे मशक बीन का नाम दिया गया।

मशक यानी पानी की थैली। बचपन में मैदानी क्षेत्रों में भिश्ती को मशक लेकर नालियों को साफ करते देखा था। इस यंत्र की थैली भी बिल्कुल वैसी ही होती हैं। भिश्ती शब्द फारसी शब्द से लिया गया है। पुराने समय में मशक में पानी लेकर युद्ध क्षेत्र में सैनिकों को पानी पिलाकर सेवा करना भिश्ती का ही काम होता था। पांच पाइपों वाला यह एक वायु वाद्य है, जिसे बांसुरी या शहनाई जैसे अन्य वाद्य यंत्रों की तरह ही फूंक मारकर बजाया जाता है। इटली, फ्रांस, इंग्लैंड से होता हुआ यह एशिया की सैर करने आ पहुंचा।

कई पड़ोसी देशों जैसे पाकिस्तान, अफगानिस्तान और नेपाल में भी लोकप्रिय हो गया और पाकिस्तान के सियालकोट और भारत के जालंधर शहर में बनाया जाने लगा। बैगपाइप यानी मशक बीन में चमड़े की थैली में चार छेद होते हैं, जिनमें से एक पाइप नीचे की तरफ और तीन ऊपर की तरफ लगे होते हैं। एक पाइप बैग से जुड़ा रहता है, जिसमें वादक फूंक मारता है और दूसरे पाइप को अपनी उंगलियों से नियंत्रित करता है और ऊपर की तरफ निकलने वाले तीन पाइप जो कंधे पर टिकाए गए होते हैं, उनके माध्यम से सुरीले स्वर निकलते हैं।

बैगपाइप का जिक्र आने पर सबसे पहले स्कॉटलैंड का ग्रेट हाइलैंड बैगपाइप का ही ध्यान आता है, क्योंकि 15 वीं शताब्दी से ही यह वहां के कबीले की संस्कृति में शामिल था। इसकी शुरुआत अक्सर ग्रामीण जीवन के साथ जोड़कर देखी जाती है। ऊब और थकान से बचने के लिए चरवाहे जानवर चराते समय इसे बजाकर मनोरंजन किया करते थे। इसे बनाने के लिए मरे हुए जानवरों का चमड़ा और बांस भी उन्हें जंगल और चारागाह में आसानी से उपलब्ध हो जाता होगा। समय के साथ-साथ इसे मशाल इंस्ट्रूमेंट के तौर पर विकसित किया गया।

आज के समय में दुनियाभर में लकड़ी और ब्रास से बनाए गए सौ से ज्यादा तरह के बैगपाइप प्रचलन में हैं। पारंपरिक रूप में यह बकरी या भेड़ की खाल को सुखाकर बनाया जाता है और इसमें इस्तेमाल किए जाने वाले पाइप, जिन्हें चेंटर भी कहते हैं, बांसुरी की ही तरह बांस के होते हैं। 1947 में अंग्रेज चले गए पर मशक बीन भारतीय सैनिकों के दिलों दिमाग में रच बस गया।

धीरे-धीरे न जाने कैसे यह हमारे संस्कृतिक समारोहों और वैवाहिक उत्सवों में शरीक हो गया। यह भारतीय सेना का भी अनिवार्य हिस्सा बन गया।

कुमाऊं रेजीमेंट के अभ्यास और कार्यक्रम के दौरान मशक बीन के सुरीले स्वर वातावरण में मिठास खोल देते हैं। चाहे रानीखेत का सोमनाथ ग्राउंड हो या अल्मोड़ा का कैंट एरिया। पूर्व सैनिक तो इस पर स्कॉटिश धुन बजाने में भी माहिर हैं। गणतंत्र दिवस समारोह के अवसर पर राजपथ में होने वाले आयोजन में, जिसमें देसी-विदेशी मेहमानों की उपस्थिति में विशेष परिधान में सजी-धजी सेना की टुकड़ियां इस वाद्य यंत्र के साथ धुन निकालते हुए कदमताल करती हैं। यह धुन इतनी असरकारी है कि पूरा वातावरण तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज जाता है। इसी तरह सार्वजनिक उत्सवों में अगर ढोल-दमाऊ के साथ मशक बीन की संगत न हो, तो रंगत फीकी सी लगती है। बेडू पाको बारो मासा और कैलै बाजे मुरूली जैसे गीत और मशक बीन एक दूसरे के पर्याय हैं। इन गीतों की धुन मशक बीन पर सुनते ही पैर खुद-ब-खुद थिरकने लगते हैं।

कुमाऊं के छोलिया नृत्य और गढ़वाल के पौणा नृत्य के दौरान मशक बीन की उपस्थिति पैरों की थिरकन और हृदय की धड़कन दोनों को बढ़ा देती है। लोक गीतों के अलावा देश भक्ति गीत, मार्शल म्यूजिक, पश्चिमी धुन, जैज, रॉक, क्लासिकल, फिल्मी गीत सभी बैगपाइप के मदद से बड़ी शान से बजाते हैं। कॉमनवेल्थ और एशियन गेम्स में भी इसका जलवा है। इसे बजाना बहुत मेहनत और लगन का काम है। चूंकि यह पाइप में मुंह से हवा भर के बजाया जाता है, तो फेफड़ों की बढ़िया एक्सरसाइज हो जाती है। इसमें धुन तभी निकलती है, जब बैग में हवा भरी हो।

अनुभूति

जन्मदिन: जीवन के सफर का उत्सव

प्रिंस श्रेयश
शिक्षक

बचपन में जन्मदिन किसी त्योहार से कम नहीं होता था। सुबह से ही घर में हलचल शुरू हो जाती थी। मां रसोई में कुछ खास बनाती थीं, पिताजी मुस्कुराते हुए आशीर्वाद देते थे, रिश्तेदार फोन करते थे या घर आकर गले लगाते थे। एक छोटा-सा केक, कुछ मोमबत्तियां और ढेर सारा स्नेह, बस इतना ही तो चाहिए था खुश होने के लिए। उस समय जन्मदिन केवल तारीख नहीं, बल्कि अपने होने का उत्सव था। फिर समय बदला। बड़े हुए तो जन्मदिन का अर्थ बदल गया। दोस्तों के साथ पार्टी, हंसी-मजाक, देर रात तक जश्न यह सब जन्मदिन की पहचान बन गया। परिवार की जगह दोस्तों का दायरा बढ़ गया। खुशी वही थी, पर रूप अलग था। उस उम्र में लगता था कि यही असली जीवन है।

फिर विवाह हुआ। अब लोग सालगिरह याद रखने लगे और जन्मदिन धीरे-धीरे परिवार तक सीमित हो गया। जिम्मेदारियां बढ़ीं, प्राथमिकताएं बदलीं। जीवन की दौड़ में तारीखें कैलेंडर के पन्नों में सिमटने लगीं। जन्मदिन अब उतना शोर-शराबे वाला नहीं रहा, बल्कि एक शांत-सा दिन बन गया, जिसमें कुछ संदेश, कुछ औपचारिक शुभकामनाएं और सामान्य दिनचर्या शामिल हो गई। धीरे-धीरे अपने बच्चे हुए। अब घर में फिर से जन्मदिन मनाया जाने लगा, पर इस बार अपने बच्चों का। उनके लिए केक, सजावट, उपहार और उत्साह। उनकी आंखों की चमक में हम अपना बचपन तलाशने लगे, लेकिन इसी बीच कहीं हमारा अपना जन्मदिन पीछे छूट गया। कभी-कभी तो चुपचाप गुजर भी जाता है। तब मन में एक विचार उठता है, जब हमारे माता-पिता हमारा जन्मदिन इतने प्रेम से मनाते थे, क्या उस समय उनका अपना जन्मदिन भुला दिया गया था?

शायद यही दुनिया की रीति है। समय के साथ केंद्र बदलता रहता है। बचपन में हम केंद्र में होते हैं, युवावस्था में मित्र, फिर परिवार और अंत में बच्चे। जीवन का चक्र ऐसे ही चलता है। एक पीढ़ी उत्सव मनाती है, दूसरी पीढ़ी उत्सव का कारण बनती है, लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि जन्मदिन की कोई कीमत नहीं रही? नहीं। जन्मदिन केवल केक या पार्टी का नाम नहीं है। यह उस जीवन का उत्सव है, जो हम जी रहे हैं, उन संघर्षों का सम्मान है, जिन्हें हमने पार किया है और उन सपनों का स्मरण है, जो अब भी हमारे भीतर जीवित हैं। आज के बदलते समाज में एक अच्छी बात भी दिखती है कि कई बच्चे अपने माता-पिता का जन्मदिन मनाने लगे हैं। वे उन्हें दो पल की खुशी देते हैं, उनके बचपन और युवावस्था को याद करने का अवसर देते हैं। यह केवल उत्सव नहीं, बल्कि कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है।